Sanskritik aur Samajik Anusandhan
www.shodhjournal.com
ISSN: 2582-5852
Received: 16-08-2021, Accepted: 01-09-2021, Published: 16-09-2021
Volume 2, Issue 2, 2021, Page No. 18-20

समकालीन परिप्रेक्ष्य में काव्य संग्रह 'वही हूँ मैं' की समीक्षा

ऋषिकेश सिंह
पी.एच.डी. (हिंदी), जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली, भारत

सारांश
कोविड-19 के कुछ माह पूर्व आया सुदेश गेरा का काव्य-संग्रह 'वही हूं मैं' समकालीन परिवेश के संदर्भ में मानवीय संवेदना और प्रवृत्तियों का निरूपण करता है। वैश्वीकरण के इस उपभोक्तावादी संस्कृति के दौर में नगरीय जीवन की विसंगति से मानवीय एवं सामाजिक संबंधों में आए परिवर्तन को यह काव्य-संग्रह किस प्रकार सहजता से व्यक्त करता है इसकी पड़ताल शोध-पत्र में की गई है। इस रूप में इस काव्य-संग्रह की कुछ प्रमुख कविताओं के संदर्भों के साथ आलोचक विद्वानों के मतों का उद्धरण देते हुए भावगत एवं कथ्यगत विशेषता के साथ-साथ भाषिक एवं शिल्पगत पक्षों की समीक्षा का प्रयास भी किया गया है।

मूल शब्द: परम्परा, आधुनिकता, मानवीय संबंध, नगरीय जीवन, स्वानुभूति

प्रस्तावना

शब्द और अर्थ के रमणीय सहभाव को साहित्यशास्त्रियों द्वारा काव्य कहा गया है। काव्य साहित्य की विशिष्ट विधा है, विशिष्ट इस अर्थ में कि इसमें भावों और विचारों का रोजनामचा नहीं व्यक्त किया जाता बल्कि ऐसे भाव एवं अनुभूतियों को व्यक्त किया जाता है जो न केवल विशेष हों साथ ही किसी विशिष्ट क्षण में लेखक हृदय को प्रभावित कर उद्वेलित कर सकने की क्षमता भी रखते हों शायद इसी कारण कविता को भावों का सहज उच्छलन कहा गया है। ये भाव इर्द-गिर्द के भौतिक परिवेश की क्रिया-प्रतिक्रिया के फलस्वरुप अनुभूति के रूप में अंतर्मन से अन्तर्हृदय की यात्रा करते हैं। इस यात्रा में वे कवि हृदय को उसकी सफल अभिव्यक्ति के लिए बार-बार प्रेरित करते हैं, शायद इसी को शुक्ल जी ने चिंतामणि भाग-1 के अंतर्गत अपने प्रसिद्ध निबंध 'कविता क्या है?' में लिखा है- "जिस प्रकार आत्मा की मुक्तावस्था ज्ञानदशा कहलाती है उसी प्रकार हृदय की यह मुक्तावस्था रसदशा कहलाती है। हृदय की इसी मुक्ति की साधना के लिए मनुष्य की वाणी जो शब्द विधान करती आई है उसे कविता कहते हैं। इस साधना को हम भावयोग कहते हैं और कर्मयोग और ज्ञान योग का समकक्ष मानते हैं।"[1] अर्थात महसूस किए गए भावों से सोद्देश्य उन्मुक्तता का प्रयास ही रचना को रच देने की प्रेरणा है । जिसे भली-भांति सार्थक करने का प्रयास सुदेश गेरा जी ने अपने काव्यसंग्रह 'वही हूं मैं' में किया है।

दरअसल यह काव्य संग्रह उनके जीवन यात्रा के एक लंबे अंतराल में मोड़-मोड़ पर मिले सतरंगी अनुभवों के पुंज में स्वत्व की तलाश, उसकी मौलिकता को बचाए रखने की जद्दोजहद एवं उसी के आलोक में परिस्थितिजन्य अनुभूति की सफल पड़ताल है। शायद इसी कारण कवयित्री ने जहां से यात्रा शुरू की है, उसे इस पूरे काव्य-संग्रह में वह भूलती नहीं हैं। बह जाने की दशा में भी वह बार-बार याद रखती चलती हैं कि 'वही हूं मैं'।

वस्तुतः 'वही हूं मैं ' केवल एक पद नहीं है बल्कि अपने आप में एक पूर्ण वाक्य है। जो परंपरा से वर्तमान तक आता है। 'वही' शब्द पूर्णतः परंपरा का द्योतक और 'मैं' समकालीनता का अर्थात यह पूरा वाक्य समकालीनता के संदर्भ में परंपरा के महत्व को बताने उसे सहेजने एवं उसे रूढि के रूप में अभिव्यक्त किए जाने के विरोध के साथ- साथ उन तत्वों का निषेध भी है। जो समकालीनता को परंपरा से दूर कर रहे हैं। कवियत्री का यह प्रयास रिश्तों, मानव स्वभाव में आए परिवर्तनों के साथ-साथ प्रकृति क्षेत्र तक विस्तृत है। तभी 'ऊंचाईयां' नामक कविता में कवियत्री कहती है कि "सीढ़ियां चढ़ते गए/ सबको पीछे छोड़/ आगे बढ़ते गए..... क्या करें ऐसी उचाईयों का/ जहां से सब कुछ दूर / बहुत दूर हो गया है।"[2] प्रस्तुत काव्यपंक्ति में 'सीढ़ियां' शब्द उत्तरोत्तर जीवनार्जित उपलब्धियों से प्राप्त ऊंचाई है जिसमें लगातार

ऊपर जाने के साथ-साथ आत्मीयों से दूर हो जाने का एक विसंगति पूर्ण बिंब भी निहित है। इसी कारण कवयित्री कहती है कि आगे बढ़ने की इस अंधी चाह में सभी अपने पीछे छूट गए एक वांछित ऊंचाई प्राप्त करने के बाद उसमें सर्वप्रथम यह निरर्थकता का भाव उत्पन्न होता है कि ऐसी ऊँचाई का क्या महत्व है जहां से सब कुछ एक अनिश्चित दूरी पर हो गया है। ऐसे में महत्वहीन एवं प्रदर्शनकारी इच्छाओं से उसका अंतस्थल मुक्त हो जाता है उसे ऊंचाइयों की महत्वहीन सार्थकता का अंदाजा लग जाता है। शुक्ल जी ने अपनी उसी निबंध 'कविता क्या है' में टिप्पणी करते हैं कि "मनुष्य अपने भावों, विचारों और व्यापारों को लिए-दिए दूसरों के भावों, विचारों और व्यापारों के साथ कहीं मिलता और कहीं लड़ता हुआ अंत तक चला चलता है और इसी को जीना कहता है। जिस अनंत रूपात्मक क्षेत्र में यह व्यवसाय चलता रहता है उसका नाम है जगत। जब तक कोई अपनी पृथक सत्ता की भावना को ऊपर किए इस क्षेत्र से नाना रूपों और व्यापारों को अपने योग-क्षेम, हानि-लाभ, सुख-दुख आदि से संबद्ध करके देखता रहता है तब तक उसका हृदय एक प्रकार से बद्ध रहता है। इन रूपों और व्यापारों के सामने जब कभी वह अपनी प्रथम सत्ता की धारणा से छूटकर अपने आपको बिल्कुल भूलकर विशुद्ध अनुभूति मात्र रह जाता है तब वह मुक्त हृदय हो जाता है।"[3]

वैश्वीकरण एवं उपभोक्तावादी संस्कृति में निरंतर पलते महानगरीय जीवन मे लक्ष्य की प्राप्ति, शिखर की चाहत, समकालीन होने की होड़ में बढ़ती सीढ़ियां एवं ऊंचाइयां, जमीन से कटाव, लोगों में परस्पर अंतःक्रिया का अभाव के मध्य कवियत्री कहीं ना कहीं अपनी परंपरा के मूल को छोड़ना, उसे भूल जाने को जिम्मेदार मानती है। लेकिन कवियत्री इस अवस्था को उसी के हाल पर छोड़ देने एवं उस पर शोक मनाने या उसे कोसने में अपना इतिश्री नहीं मानती बल्कि परंपरा को छोड़ने की इस कसक से ऊर्जा लेते हुए उसका स्थाई समाधान ढूंढने की कोशिश करती हैं। जिसके लिए वह प्रमुखतः रिश्तों को उपकरण के तौर पर प्रयोग करती हैं। खासकर दोस्ती तथा प्रेम के रिश्ते को।

दरअसल इन दोनों रिश्तो के परितः ही मानव संवेदना निर्मित एवं विकसित होती है, और जब परिवर्तन का दौर आता है, तो यही दोनों रिश्ते ही सर्वाधिक प्रभावित होते हैं। जिसके कारण मानवीय संबंध, स्वभाव एवं प्रकृति में बदलाव आने लगता है। वह अपना मूल रूप त्यागने लगता है, परंपरा से कटने लगता है। इस परिवर्तन और उससे उपजे भाव को कवियत्री बड़ी शिद्दत से महसूस करती हैं। 'काश !' कविता इसी की परिणति है। जिसमें दो दोस्तों की दोस्ती के बीच 'मशहूरी' की दीवार आ जाती है। जो मिथ्या प्रदर्शन के अलावा और कुछ भी नहीं है। प्रसिद्धि के मान में उसे सब कुछ तो मिल किंतु वह रिश्तों को बचा न पाया सब होते हुए भी अकेला है। इस संबंध में डॉ नगेंद्र द्वारा अपने संपादित साहित्येतिहास ग्रन्थ 'हिंदी साहित्य का इतिहास' के अंर्तगत आज की कविता के संदर्भ में कहा गया यह कथन बेहद तर्कसंगत है कि "पीढ़ी की कविताएं अधिक तेज धक्कामार और आज के जीवन की सड़ांध को अधिक प्रत्यक्षता से उभारने वाली हैं आज की कविता में वे कवयित्रियां भी आती हैं जिनमें आज की व्यथा अनुभूति के बहुत महीन, सूक्ष्म और संयत स्तर पर उभरी हैं। नारी होने की अपनी कुछ विवशताएं होती हैं।..... वे अपने परिवेश के दबाव से महसूस होती हुई पीड़ा के बोध को या सौंदर्यबोध को अधिक तीव्रता और गहराई से व्यक्त कर सकती हैं।"[4]

दोस्ती के बनिस्बत प्रेम का कैनवास इस काव्य संग्रह में काफी विस्तृत है। उसमें आत्मीयता है, पूर्व दीप्ति, आग्रह, मान, के साथ-साथ चेतावनी भी है, आत्मीयता तो इतनी है कि अपनी आंखों का पानी वह उसकी आंखों से निकलते देखना चाहती है। अपने आंखों में, मन में, और खयालों में बसाना चाहती है। संवेदना के इस साहचर्यता में वह किसी भी हद तक जाकर उसे पाना और मनाना चाहती है, लेकिन उसकी भी अपनी शर्ते हैं। वह एकनिष्ठता या अपने स्वत्व के परिहार की कीमत पर नहीं, बल्कि उसकी उन्मुक्तता की सन्धि पर। वह मजबूरी, बंधनों में बंधकर या प्रेम को थोपने के रुप में स्वीकार नहीं करना चाहती है बल्कि सहचारी, प्राण की तरह उसकी सहयोगिनी के रूप में स्वच्छंद रहने के साथ-साथ उसके सुख-दुख का आधा भागीदार बनना चाहती है। केवल अपने आंसू उसकी आंखों से निकलते नहीं देखना चाहती बल्कि उसके कंधों के भार को खुद के कंधों पर भी उठाना चाहती है। इसी कारण इस संग्रह की कविताओं में स्त्री अधिकारिता, स्त्री मुक्ति, और स्त्री सशक्तिकरण का भाव भी प्रबलता के साथ-साथ उपस्थित है। इस रूप में कवियत्री प्राचीन रूढ़ियों को एक झटके में तोड़ देना चाहती हैं। 'लक्ष्मण रेखा' कविता में वह ऐसी सभी रेखाओं और पाबंदियों को लांघकर पूरे पंख फैलाकर स्वच्छंद परिवेश में संचरण करना चाहती है। परंतु यह संचरण अकेला नहीं, बल्कि अपने सहयात्री के साथ है क्योंकि उसके उन्मुक्तता की चाह रिश्तों की गलियों से गुजरती है। जिस पर विश्वास की बजरी बिछी है और उस पर सहजता से ही चला जा सकता है। 'प्रिय को मिलने' कविता का अंतिम छंद इसका उदाहरण है।

समकालीन दौर में परंपरा और रिश्तों की महत्ता के साथ-साथ कवयित्री ने जीवन तथा जगत के अन्य पहलुओं की पड़ताल भी की है। जिसमें मनोविकार से लेकर, सुकून की

तलाश एवं व्याप्त विविधता को 'जगत का मुजरा' नाम से उद्धृत किया है। दिनचर्या में घटने वाली तमाम घटनाओं (मेले, दंगल, हास-परिहास) को भी रोमांचक रूप में प्रस्तुत किया गया है। पुरातन तथा परंपरागत विचारों एवं मूल्यों के बरक्स नए मूल्यों एवं संवेदना के स्वरूपगत परिवर्तन तथा प्रक्रियाओं को चित्रित करते हुए कवयित्री साहित्य और कला क्षेत्र में तेजी से हो रहे नए चिंतन एवं नए प्रयोग को इंगित करते हुए आधुनिकतावाद की साहित्यिक पृष्ठभूमि को भी व्यक्त करने का प्रयास करती है। इस संदर्भ में डॉ अमरनाथ द्वारा 'हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली' नामक ग्रन्थ में लिखित यह संदर्भ बेहद सटीक है कि- "आधुनिकीकरण में सामाजिक वर्गों की सीमाओं के मिटने तथा ग्रामीण क्षेत्रों से नगरों और महानगरों की ओर प्रस्थान सामाजिक गतिशीलता, शिक्षा का प्रसार, ज्ञान विज्ञान का विस्तार, सामंती मूल्यों का ह्रास आदि शामिल है।.... आधुनिकतावाद अतीत से विमुख होकर वर्तमान में शरण लेता है वह स्थाई अनुभवों की अपेक्षा क्षणिक अनुभव को वाणी देता है। अतः मनुष्य के अनुभव क्षणिक तथा विखंडित होते हैं। आधुनिकतावाद धर्म, प्रकृति, परंपरा, नैतिकता, प्रतिबद्धता, आस्था, मूल्य तथा प्रत्येक प्रचलित विचार तथा वस्तु स्थिति और व्यवस्था को चुनौती देता है।"[5]

इस संग्रह की पहली कविता 'कुछ पर्दे' संग्रह की बेहतरीन कविताओं में गिनी जा सकती हैं। इसका बड़ा कारण उसमें अनकहनी में भी कुछ कहनी की शैली का होना है। मानवीय भाव एवं काव्य भाव दोनों की प्रवृत्ति को सटीक बताते हुए कवियत्री ने सही लिखा है कि "क्या जरूरी है/ कि हर बात को समझा जाए"[6] क्योंकि अनकहे और अनबूझे का अपना ही रस होता है। इस शैली का निर्वाह संग्रह की जिस भी कविता में है वह अनायास ही आकृष्ट करती है। इस प्रकार भावगत या कथ्यगत रूप में 'वही हूँ मैं' की कवयित्री न केवल एक भावग्राहक के रूप में स्वानुभूति को सफलतापूर्वक अभिव्यक्त करती हैं बल्कि स्त्री लेखिका के रूप में पुरुष भावबोध के समानांतर नारी संवेदना का पुरजोर निरूपण कर स्त्री विमर्श को सशक्त करने का प्रयास भी करती हैं। इस काव्य संग्रह के संदर्भ में स्त्री लेखन पर हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास में कथित बच्चन सिंह की यह टीप बेहद प्रासंगिक लगती है कि- "स्त्री लेखन की अपनी दुनिया होती है जो पुरुष लेखन की दुनिया के समानांतर रहती है- इतनी समानांतर भी नहीं कि कहीं उसका स्पर्श भी न करे, उसे काटे भी नहीं। स्त्री से सर्वथा अलग न पुरुष की दुनिया हो सकती है और न पुरुष से सर्वथा अलग स्त्री की दुनिया फिर भी ऐतिहासिक- राजनैतिक, प्राणिशास्त्रीय कारणों से उनमें अलगाव दिखाई देता है। इस अंतर या पार्थक्य किसी स्त्री-लेखन की पहचान बनती है।"[7]

काव्य संग्रह का शिल्प अपने भाषिक संयोग एवं विविधता के कारण अपनी ओर ध्यान खींचता है क्योंकि जिस प्रकार कथ्य भावपूर्ण विवध आयामों से निर्मित है, वैसे ही शैलीगत रूप में भी कवयित्री ने उर्दू-हिंदी का सफल मिश्रण किया है। जहां काव्य रूपों में मुक्तक, लघुतुकान्तता और मुक्त छंदों का प्रयोग किया है वहीं नज्म, गजल, और शायरी शैली का भी अच्छा प्रयोग है। शब्दों के चयन में भी विषय अनुरूप हिंदी, अंग्रेजी और उर्दू के शब्दों का सार्थक प्रयोग किया है। शैली के रूप में खूबसूरती इस संग्रह की यह है कि इसमें सरल, सहज भाषा के साथ-साथ साफगोई और मिठासपन का आदि से अंत तक निर्वाह किया गया है। पाठक कविता को एक बार शुरू करता है तो सहज और सरस भावों में निर्बाध बहते हुए अंत तक पहुंच जाता है। कविता का द्विभाषा में होना ना केवल कवियत्री के भाषा प्रेम को दिखा रहा है बल्कि कविता के संप्रेषण में इसे विशिष्टता प्रदान करते हुए इसे अन्य काव्य संग्रहों से अलग और मौलिक भी बनाता है, और अंत में इस संग्रह के पेशे लफ़्ज़कार सदिकुर्रहमान किदवई साहब से सहमत हुए यह कहा जा सकता है कि यह रचना दोनों जबानों के पाठकों को आकृष्ट करेगी। इस प्रकार समकालीन काव्य लेखन में यह संग्रह तत्कालीन परिवेश का यथोचित रूप से निरूपण करता है।

सन्दर्भ सूची

1. पृष्ठ सं.- 141, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, भाग-1
2. पृष्ठ सं.- 13, सुदेश गेरा, वही हूँ मैं
3. पृष्ठ सं.- 141, आचार्य रामचंद्र शुक्ल, चिंतामणि, भाग-1
4. पृष्ठ सं.- 631, डॉ. नगेंद्र, हिंदी साहित्य का इतिहास
5. पृष्ठ सं.- 59-60, डॉ. अमरनाथ, हिंदी आलोचना की पारिभाषिक शब्दावली
6. पृष्ठ सं.- 4, सुदेश गेरा, वही हूँ मैं
7. पृष्ठ सं- 493, बच्चन सिंह, हिंदी साहित्य का दूसरा इतिहास